महाकाव्य का आखिरी नायक

न्यूयार्क में होने वाले डॉक्टरों के सेमिनार के लिए भास्कर राव का पेपर स्वीकृत कर लिया गया था। सेमिनार बोर्ड की ओर से उनके पास इस आशय का एक पत्र भेजा गया था - "निश्चित ही भारत के अलावा अन्य देशों को भी आपके इस काम से बहुत ज्यादा मदद मिलेगी।" इसके बाद सेमिनार में सम्मिलित होने के लिए कुछ निर्देश दिए गए थे।

टाइप किए हुए इस छोटे से पत्र को भास्कर राव ने उलट-पुलट कर बीसियों बार पढ़ा। उस दिन आए हुए मरीजों को उन्होंने इत्मीनान से देखा और किसी न किसी बहाने यह जरूर बताया कि उन्हें न्यूयार्क बुलाया गया है।

क्लीनिक के ऊपर ही उनका आवास था। दोपहर तक मरीजों को निबटा कर उन्होंने ऊपर जाकर कपड़े बदले और इत्मीनान से खड़े होकर सड़क की ओर देखने लगे। वहाँ एक पागल धूप में खड़ा होकर सूरज को ललकार रहा था। मुहल्ले के मैले-कुचैले लड़के पीछे से हो-हो करते हुए ढेला फेंक रहे थे। चाय की दुकान के सामने बेंच पर बैठे हुए दो कांस्टेबुल अपनी रायफलों पर ठुड्डी टिकाए धीरे-धीरे हँस रहे थे।

टहलते हुए भास्कर राव मेज के पास गए और पत्नी की चिट्ठी को दुबारा पढ़ने लगे। नीचे लॉन में माली करीने से पौधों की कटाई कर रहा था। कमरे और बालकनी के बीच टहलते हुए वे सिर्फ न्यूयार्क के बारे में सोच रहे थे। उनके चेहरे पर हल्की मुस्कराहट और आँखों में दुनिया को समझने की गंभीरता चमक रही थी। खिड़की और दरवाजे से आ रही हवा उन्हें स्फूर्ति और ताजगी से भरी हुई लग रही थी। रोशनदान पर बैठा हुआ एक कबूतर अपनी मादा के पंखों में सिर छुपा कर खेल रहा था। उम्र के इस मुकाम पर पहली बार दुनिया उनके सामने पवित्र आस्था की तरह शांत भाव से गतिमान हो रही थी। उन्होंने आदमी के दायित्वों के बारे में सोचा और धीरे से बुदबुदाए - "कठोर परिश्रम उन्नति का मूलमंत्र है।" इन समूची कोमल और शांत मनःस्थितियों के बीच उस समय अचानक खलल पड़ा, जब नीचे गेट पर खड़ा दरबान जोर-जोर से किसी को गाली देने लगा।

रोज के मुताबिक यह भास्कर राव के सोने का समय था। अक्सर इस समय आए हुए मरीजों को दरबान गालियाँ देता और धक्के मारकर भगा दिया करता है। लेकिन आज भास्कर राव न तो सोए हुए थे और न ही उनके भीतर काम के थकान की कोई झुंझलाहट थी। दरबान की आवाज सुनकर वे बालकनी की ओर चले आए। उन्होंने देखा कि एक मैली-कुचैली गंदी सी औरत अपनी गोद में बच्चा लिए दरबान के पैर पकड़कर गिड़गिड़ा रही है। एक निरीह और सहमा हुआ सा आदमी हाथों में गठरी पकड़े चुपचाप पीछे खड़ा है। दरबान बेरहमी से धकेलते हुए उन दोनों को गालियाँ दे रहा है। भास्कर राव ने दरबान को रोककर उन दोनों को क्लीनिक में बैठने के लिए कहा और खुद नीचे चले आए।

यह औरत दो महीने पहले अपनी आँख दिखाने आई थी। भास्कर राव ने उसी समय बता दिया था कि तुरंत ऑपरेशन करा लो वरना आँख खराब हो सकती है। जब इस

समय उन्होंने जाँच की तो पता चला कि एक आँख पूरी तरह खराब हो चुकी है और अब दूसरी को भी बचा पाना मुश्किल है। उन्होंने झुँझलाते हुए लापरवाही बरतने के लिए उसके पति को डाँटा।

पति गिड़गिड़ाने लगा - "साहब, पैसा नहीं था। एक आदमी से उधार लेकर आज आ रहा हूँ। आप तो भगवान हैं साहब, कोशिश कीजिए।"

जब वे दोनों जा रहे थे तो भास्कर राव ने देखा कि सिसकती हुई औरत अपनी साड़ी के पल्लू से आँखों को पोंछ रही है। असहायता और विश्वास से भरा हुआ उसका पति लौटना नहीं चाहता था। औरत ने समझाया - "अब चलो! जो कुछ तकदीर में बदा है वह तो भोगना ही पड़ेगा।" उसकी गोद में चिपका बच्चा लॉन में खिले फूलों को देखकर मचल रहा था। यह सारा कुछ भास्कर राव को इतना कारुणिक लगा कि वे भीतर तक काँप गए। और जैसे कि विराट समुद्र के अखंड स्थैर्य को तोड़ता कँपाता एक द्वीप उभर आए। जीवन के चहल-पहल से भरा द्वीप अपने हाथ उठाकर सोने की सभ्यताओं से लदी नौकाओं पर बैठे सौदागरों को अपनी ओर बुलाने लगा। वहाँ खपरैलों के घर थे। गोबर से पुता आँगन था। घास चरती भैंसे थीं। गाँव के प्राइमरी स्कूल में मास्टर और किसान पिता की छाया में पटरी पचरता, ककहरा रटता बचपन था।

एक दिन पिताजी ने घर की इकलौती दूध देने वाली भैंस को बेच दिया। जो कुछ भी पैसा मिला उससे माँ का इलाज कराने के लिए वे शहर के डॉक्टर के पास गए। घर में बूढ़ी दादी और भास्कर राव की बड़ी बहन थी। माँ को गए कई दिन बीत गए थे। एक साँझ स्कूल से लौटने के बाद बालक भास्कर घर की छत पर अकेला बैठा उदास पड़ा-पड़ा रो रहा था। उसी दिन पिताजी आए थे। माँ साथ नहीं थी। दूसरे दिन भास्कर भी पिताजी के साथ शहर गया।

बस से उतर कर जब वे शहर में घुसे तो शाम हो रही थी। खंभों पर बिजली के बल्ब जल रहे थे। दुकानों में जल रही ट्यूबलाइटों का दूधिया प्रकाश बाहर तक फैल रहा था। हजारों लोग आ रहे थे। जा रहे थे। रिक्शे थे। मोटर गाड़ियाँ थीं। एक जगह सड़क पर तीन-चार गायें निश्चिंत भाव से खड़ी थीं। मोटरें तेज हार्न देती हुई उन्हें दरेर कर निकल जातीं। किताबों में छपे ट्रैफिक पुलिस वाले को सामने सड़क के चौराहे पर देखकर भास्कर को अजीब सा कौतूहल हुआ। उसने पिताजी से पूछा - "ये गायें किसकी हैं? और ये मोटर गाड़ियों को देखकर क्यों नहीं चिहुँक कर भाग रही हैं?" पिताजी ने बताया - "शहर के आदमियों की तरह यहाँ की गाय-भैंसे भी समझदार

होती हैं?" पिताजी की उँगली पकड़े भास्कर सब कुछ अचरज से देखता हुआ सोच रहा था कि इन साफ, चमकती सड़कों पर चलने वाले लोग कितने खुश हैं। पिताजी ने एक दुकान से माँ के लिए केले और संतरे खरीदे। उसमें से दो संतरे खाने के बाद भास्कर ने उसके छिलके अपनी पैंट की जेब में रख लिए थे। सड़क के किनारे एक सफेद और खूब चिकनी जगह पर पिताजी ने पेशाब करने के लिए खड़ा कर दिया था। वहाँ अगल-बगल कई लोग थे। शर्म के मारे या कि क्या था भास्कर को पेशाब ही नहीं हुई। इस तरह घूमते टहलते वे सरकारी अस्पताल तक पहुँचे।

वहाँ कंपाउंड में चारों तरफ धुआँ उठ रहा था। मरीजों के साथ गाँव से आए हुए लोग उपलों या स्टोव पर चावल और आलू उबाल रहे थे। माँ की आँखों में मोतियाबिंद का ऑपरेशन हुआ था। अस्पताल के बरामदे में और पिछवाड़े ढेर सारे आदमी और औरतें आँखों पर कोल्हू के बैल की तरह गोल और सख्त पट्टियाँ बाँधे गठरी की तरह चुपचाप पड़े हुए थे। भास्कर ने निर्जीव गठरी की तरह कोने में पड़ी माँ और उनकी आँखों पर बँधी नीली पट्टी को देखा। कई दिनों बाद इस हॉल में माँ से मिलने की आह! अचानक तेज हिचकियों के बीच बालक मन की करुणा फूट पड़ी। माँ ने बेटे को सीने से चिपका लिया और हाथों के अंदाज से गालों को सहलाते हुए आँसू पोंछने लगी थी।

आरामकुर्सी से उठते हुए भास्कर राव ने आँखें खोलीं। सामने नीम के पेड़ पर एक पतंग उलझी हुई थी। एक लड़का उसकी डोर को ढीला करके आहिस्ते-आहिस्ते खींच रहा था। गेट के बाहर बैठा हुआ दरबान बीड़ी सुलगा रहा था। भास्कर राव सोच रहे थे कि बिना एक शब्द बोले, एक मामूली बीमारी के कारण उस औरत ने अपने अंधेपन को भी उसी तरह स्वीकार लिया जैसे पति और बच्चे को। रोता-गिड़गिड़ाता उसका पति देर तक उनकी आँखों के सामने तड़पता रहा। इस बीच नौकर दो बार कॉफी के लिए पूछ चुका था। वहाँ से उठकर वे लॉन में टहलने लगे। साँझ नई दुल्हन की तरह कॉलोनी की सड़कों और पेड़ों पर अपने महावर के निशान छोड़कर आकाश के पश्चिमी छोर की ओर लौट रही थी। एक लड़का एक लड़की को आइसक्रीम खिला रहा था। लड़की नखरे कर रही थी। इस बीच आइसक्रीम पिघलकर उसके उरोजों पर टपक गई। लड़का उसे पोंछ देने के लिए लड़की से अनुनय करता हुआ अगल-बगल ताक रहा था। लड़की उसे डाँट रही थी कि क्यों वह सड़क पर इस तरह उसके पीछे पड़ा हुआ है, कि कोई भी देख लेगा।

लेकिन भास्कर राव का दिमाग उस अंधी औरत के पीछे एक ऐसी दुनिया में चला गया जहाँ फूल नहीं उगते। सुबह नहीं होती। वहाँ गालियों से भाषा सीखते बच्चों की साँझ

होती है। वहाँ रात की भयावहता को आँखों से भरकर अंधी औरत की बदबू करती साँस होती है। सड़क पर ट्यूबलाइट्स जगमगाने लगी थीं। लेकिन मनुष्यता के तर्क ने उन्हें निर्जन गुफा के अँधेरे में असहाय-सा छोड़ दिया। एक उदासी बर्फ की तरह उनके भीतर जमने लगी थी। घर पर मन नहीं लगा तो क्लब की ओर चल पड़े।

क्लब के लॉन में बैठे हुए सिटी एस.पी. माथुर जैसे भास्कर राव का ही इंतजार कर रहे थे। भास्कर राव ने उन्हें बताया - "एक औरत दो महीने पहले हमारे यहाँ आई थी। अगर उसी समय एक छोटा-सा ऑपरेशन करा लेती तो सब ठीक हो जाता। लेकिन आज जब दोनों आँखें पूरी तरह खराब हो गईं तब दुबारा आई। अब तो उसे अंधा होने से कोई नहीं बचा सकता।"

माथुर ने कहा - "डॉक्टर साहब, आपने जिस काम के लिए कहा था, उस सिलसिले में मैंने अपने एक मित्र से बात की थी। शहर के बीचों-बीच उनका मकान है। आपके क्लीनिक के लिहाज से बहुत अच्छा रहेगा। आप चाहें तो पंद्रह लाख के आसपास मिल सकता है।"

भास्कर राव चुप लगा गए।

अपनी दिनचर्या से ऊबे हुए अधिकांश लोग क्लब में आकर चहक रहे थे। हॉल के बड़े से दरवाजे पर 'एयर इंडिया' का महाराजा बा-अदब 'फ्रीज' था। यहाँ आने वालों में ज्यादातर शहर के अफसर थे। नया आया हुआ डी.एम. कम उम्र का स्मार्ट नौजवान था। सारे अफसर उसके सामने झुके हुए से खड़े थे। वह उन्हें कोई अनुभव सुना रहा था। और वे सब आँखें फाड़-फाड़ कर बीच-बीच में ठहाके लगा रहे थे। डी.एम. की नजर बीच-बीच में बार-बार अफसर-पत्नियों के बीच घूमकर एक इंजीनियर की कंचन काया बीवी के चेहरे पर चिपक जाती और जैसा कि औरतों का स्वभाव होता है - अपने चहेते को अपनी ओर आकर्षित पाकर वे उसके प्रति लापरवाह होने का नखरा करती हैं - वह भी दूसरी औरतों से बातें करती हुई बार-बार कंधे को उचकाती और सिर को झटका देकर बालों को पीछे की ओर उछाल देती। फिरोजी रंग की बनारसी साड़ी के सफेद बार्डर की जरी चमक रही थी। वह सामने वाली औरतों की बातें ध्यान से सुनने का अभिनय कर रही थी। बीच-बीच में मुस्कराती और गालों पर हल्के गड्ढे उभर जाते। डी.एम. किसी न किसी बहाने उधर जरूर देख लेता। एक औरत ताड़ गई। वह दूसरे कोने से चलकर उसके करीब पहुँची और बोली - "हाय मिसेज सिंहल, आज तो ताश में सिर्फ दो ही पत्ते हैं, एक बेगम और दूसरा गुलाम। बाकी तो सब जोकर हैं।" जोर से ठहाका गूँजा और सुंदरता ऐंठ कर लरज गई। भास्कर राव उनकी खिलखिलाहटों में

उभरते गाढ़े लिपिस्टिक को देख रहे थे और सोच रहे थे कि महज तीन सौ रुपए के लिए अंधी हो गई औरत इनमें कहाँ हो सकती है? वह कहीं नहीं थी। अभी तो क्लब की शाम शुरू हो रही थी, लेकिन वे ऊब कर वहाँ से निकल गए।

इतनी जल्दी घर लौटने की इच्छा नहीं थी। रास्ते में उनके एक प्रोफेसर मित्र का घर था। वे वहीं चले गए। प्रोफेसर साहब इस समय अपने बच्चों के साथ टी.वी. पर कोई सीरियल देख रहे थे। भास्कर राव को देखकर बहुत खुश हुए। न्यूयार्क जाने की बात सुनकर उन्होंने भास्कर राव को बधाई दी। दोनों लोग देर तक बातें करते रहे। चलते समय भास्कर राव को छोड़ने वे गेट के बाहर तक आए। सड़क पर सन्नाटा था। भास्कर राव ने उन्हें भी उस औरत की बात बताई और कहा - "उस औरत के बारे में सोचते हुए मुझे पता नहीं कैसा लग रहा है। जानते हैं, वह इलाज करा लेती लेकिन उसके पास तीन सौ रुपया नहीं थे। सोचिए! आदमी के लिए आँख से बड़ी चीज क्या होगी। वे पति-पत्नी दोनों काम करते हैं। क्या हालत है! वे दो महीने बाद भी तीन सौ रुपया उधार लेकर आए थे उसका पति रो-गिड़गिड़ा रहा था। लेकिन अब तो उसे भगवान भी नहीं बचा सकता।"

प्रोफेसर ने कहा - "भास्कर, हमारे यहाँ गरीबी सबसे बड़ी बीमारी है। तुम डॉक्टर हो लेकिन तुम्हारे पास इसकी कोई दवा नहीं है।" कुछ और भी उन्होंने बताया और अंत में पूछा कि - "मेरी पोती के दाँत टॉफी खाने से खराब हो रहे हैं। कुछ उपाय हो तो बताओ।"

भास्कर राव का मन अजीब तिक्तता से भर गया। टालने की गरज से उन्होंने कुछ बता दिया और उदास होकर घर लौट आए।

रात सोने के पहले टहलते हुए जब वे बालकनी की ओर गए तो वहीं खड़े होकर देर तक सड़क पर उस ओर देखते रहे जिधर से वह औरत अपने पति के साथ लौट गई थी। पेड़ों की पत्तियाँ ठंड से अकड़ रही थीं। ओवरकोट पहने एक बूढ़ा आदमी सड़क पर जा रहा था। दरबान ने गेट में ताला बंद कर दिया था। वे देर तक वहीं चुपचाप खड़े रहे। अंत में उन्होंने अपने सिर को झटका दिया और लायब्रेरी में चले गए।

इस बीच भास्कर राव रोज रात लायब्रेरी में बैठकर कुछ लिखा करते। क्लीनिक में दवा कराने आए मरीजों से अक्सर पूछा करते - तुम कहाँ के रहने वाले हो? क्या करते हो, और दिन भर में कितना कमा लेते हो? आदि-आदि। आस-पास के दुकानदारों तक ने महसूस किया कि आजकल भास्कर राव अनायास ही कभी 'ब्रेड' का तो कभी 'बोरोलीन' का दाम पूछा करते हैं और कुछ खरीदते नहीं।

जब वे न्यूयार्क के लिए रवाना हुए तो स्थानीय अखबारों ने काफी महत्व देकर इस समाचार को प्रकाशित किया। वहाँ कई देशों की जानी-मानी हस्तियाँ आई हुई थीं। सबने अपना-अपना पेपर पढ़ा। जब भास्कर राव की बारी आई तो पेपर पढ़ने के पहले क्षमा याचना के साथ उन्होंने एक लंबी-चौड़ी कारुणिक भूमिका बयान की - "ऊँची पहाड़ियों और विशाल मैदानी इलाकों के बीच फैला हुआ हमारा देश कुरूप गाँवों का अजायबघर-सा होता जा रहा है। मेहनत से थके बीमार इन गरीब गाँवों में लोग आज भी पीने के लिए तालाब के गंदे पानी का इस्तेमाल करते हैं। अधिकांश लोग पेचिस के मरीज होते हैं। एक आदमी को औसत तरीके से स्वस्थ रहने के लिए कम से कम पच्चीस रुपए की खुराक चाहिए। लेकिन हमारे यहाँ यह मुश्किल से पाँच रुपया भी नहीं है। ठीक है कि यह सेमिनार चिकित्सा विज्ञान की नई खोजों में सहायक होगा, किताबें लिखी जाएँगी। लेकिन अगर किताबें जीवन तक नहीं पहुँचेंगी तो ये सारी खोजें बाजार में मिलने वाले घटिया मलहम से ज्यादा महत्व नहीं रखेंगी। क्या ऐसे देश में आप किसी स्वस्थ आदमी की कल्पना कर सकते हैं, जहाँ डेढ़-दो रुपया में बनने वाली विदेशी कंपनियों की दवाइयाँ बीस-बाईस रुपए में बेची जाती हैं। आम आदमी के स्वास्थ्य से इन बातों का गहरा संबंध है। भूगोल की यह स्थानिक विशेषता हमारी त्रासदी का प्रतीक भी है कि जब भारत जैसे देशों में सूरज डूबता है तब लंदन या न्यूयार्क की सड़कों पर सुबह होती है।"

इन बातों का तुक क्या है? बे-तरह बोर होकर ऊबते हुए लोग अपने-अपने सिगार सुलगा कर न्यूयार्क के मौसम के बारे में बातें करने लगे। एक बुजुर्ग अपने बगल में बैठी महिला को बता रहा था कि "भारत में लोगों के पास वक्त बहुत ज्यादा होता है। इसीलिए वे लोग सीधी और सरल बातों को भी घुमा-फिरा कर या कभी-कभी तो एकदम उल्टे ढंग से बयान करने और सोचने के आदी होते हैं। वहाँ प्रेम को बुरा माना जाता है जबकि रात में सड़क से गुजरती किसी महिला के साथ दस-दस लोग आसानी से "रेप कर देते हैं। एकदम पशुओं की तरह।" उस महिला ने बताया - "मेरे पति 'विजनेस' के सिलसिले में अक्सर भारत जाया करते हैं। आजकल वहाँ के शहरों में हर सुबह सड़कों पर लाशें पड़ी हुई मिल जाती हैं। उनका कोई वारिस नहीं होता। देर दोपहर तक कांस्टेबुल उन लाशों को उठाकर नालियों में या गटर में डाल देता है। वे वहाँ महीनों सड़ती रहती हैं।"

भास्कर राव की बातों का असर यह हुआ कि बाद में जब उन्होंने पेपर पढ़ा तो उस पर किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया।

दूसरा सत्र 'मेडिसिन' से संबंधित था। जॉन रिचर्ड ने 'एड्स' पर अपना चौकाने वाला शोध पढ़ा। सारे लोग उनकी गंभीरता स्वीकारते हुए उसका महत्व बता रहे थे। जब सेमिनार बोर्ड इस बात पर विचार कर रहा था कि इस पेपर को किसी बड़े पुरस्कार के लिए प्रस्तुत किया जाए तभी भास्कर राव खड़े हुए बोले - "शताब्दी के इन अंधकार पूर्ण वर्षों में एड्स मुख्य समस्या है ही नहीं। तीसरी दुनिया और खासकर भारत जैसे देशों के लिए तो यह बे-मतलब की बात है। वहाँ तो लोग आज भी पेचिस और भुखमरी से ही जूझ रहे हैं...।"

अभी भास्कर राव अपनी बात कह ही रहे थे कि इंग्लैंड के एक बुजुर्ग प्रोफेसर ने अफसोस जाहिर किया - "हमें बहुत दुख है कि अब भारत के लोग ऐसी जगहों पर भी राजनीति और नेतागिरी की बेवकूफीपूर्ण बातें करने लगे हैं। क्या बोर्ड के लोग ऐसे महापुरुषों को बुलाकर सेमिनार को फालतू लोगों का अड्डा बनाना चाहते हैं? फिर ये लोग क्यों नहीं समझते कि हम लोग यहाँ किसी देश के अर्थशास्त्र पर कविता सुनने नहीं आए हैं।"

सारे लोग भास्कर राव की ओर इस तरह देख रहे थे जैसे वे किसी अजायबघर से चले आए हैं। उन्होंने अपने को बहुत अपमानित महसूस किया और चुपचाप बैठ गए। हॉल में सन्नाटा छा गया था। कुछ लोग उनकी ओर देखकर मुस्करा रहे थे।

रात के समय जब सारे लोग डिनर के लिए गए हुए थे, तब भास्कर राव टहलते हुए बहुत दूर निकल गए। आज दिन की घटी सारी घटनाओं को लेकर वे आत्मविश्लेषण कर रहे थे। उन्हें कहीं अपनी गलती नहीं दिख रही थी। अजीब सी परेशानियों में पड़े हुए वे बहुत दूर तक चले गए। एक जगह तीन-चार लड़के और लड़कियाँ समलैंगिकता की स्वतंत्रता के लिए पोस्टर चिपका रहे थे। पोस्टर पर दो अधेड़ आदमी बहुत घृणास्पद ढंग से एक-दूसरे को चूमते हुए बनाए गए थे। भास्कर राव ने पूरे जेहन में भर आई घृणा को जोर से थूका और लौट आए।

दस दिन की न्यूयार्क यात्रा से लौटकर भास्कर राव जब भारत आए, यहाँ के अखबारों में छपे उनके समाचारों को लोगों ने चुटकुले की तरह पढ़ा। एक स्थानीय अखबार के संपादक ने, जो सीमेंट ब्लैक किया करता था, बगैर भास्कर राव से मिले ही लिख दिया कि "भास्कर राव चुनाव लड़ने को कह रहे हैं।" आगे उसने टिप्पणी देते हुए यह भी लिखा कि... "न्यूयार्क में आयोजित अपनी पहली चुनाव सभा में ही भास्कर राव ने देश का नाम काफी रोशन कर दिया है।"

सूचना पाकर भास्कर राव की पत्नी और उनका लड़का जो दूसरे शहर में आई.ए.एस. अधिकारी था, उनसे मिलने आए। मित्रों ने समझा कि भास्कर राव की तबीयत खराब हो गई है। इसलिए वे लोग भी आए। शाम का समय था। सब लोग उनके कक्ष के मातमी वातावरण में बैठकर अखबार वालों की भर्त्सना कर रहे थे। तभी भास्कर राव ने सबको बताया कि "अब मैं रोज शाम दो घंटे गरीबों की बस्ती जाऊँगा और मुफ्त में उनका इलाज करूँगा।" यह सुनकर उनकी पत्नी भीतर से डर गईं। उन्हें लगा कि कहीं अखबार वालों की ही बात सच न हो जाय। पास बैठे एक आदमी से बोली - "भाई साहब, आप इन्हें बताइए न! अब क्या इनकी उमर देश-सेवा करने की रह गई है। और वैसे भी लोग चारों ओर हँस रहे हैं।"

भास्कर राव इधर कई दिनों से कुछ ऐसे लोगों पर झल्लाए हुए थे जो मिल नहीं रहे थे। पत्नी पर ही उबल पड़े - "नहीं, यह तो बस खाने और दिन भर तुम्हारे साथ सोने की उमर रह गई है।"

बेटा बड़ा हो चुका था। इतने लोगों के बीच माँ के लिए ऐसी बातें सुनकर सन्न रह गया, बोला - आप तो सामान्य आदमी का भी विवेक खो चुके हैं। जाइए, लड़िए न चुनाव! कौन रोक रहा है?

भास्कर राव को अखबार के उस संपादक की तरह अपना बेटा भी नीच और कमीना लगा। वे जलती आँखों से उसे घूरते रहे, फिर चुप लगा गए। बाकी लोग यह सोचकर कि भास्कर राव जी परेशान हैं इन्हें आराम की जरूरत है; उठकर चले गए।

इस बीच हुआ यह कि शहर के बाहर जहाँ दूर-दूर तक गंदगी और मक्खियों के बीच गरीबों की झुग्गियाँ फैली हुई थीं, वहीं एक थोड़े साफ-सुथरे स्थान पर लकड़ी की मेज-कुर्सी लगा कर भास्कर राव हर शाम नियमित बैठने लगे। गरीब मरीजों की दवा करते हुए उन्हें भीतर से एक अजीब किस्म की राहत महसूस हो रही थी। देर रात जब वे घर लौटते तो अनायास ही गुनगुनाया करते। उन्हें हर समय लगा करता कि सब कुछ इसी तरह पहले से चलते रहना चाहिए था, जो कि नहीं चल सका था। बहरहाल...! पत्नी और बेटा यह सोचकर कि चलो जैसा भी चल रहा है चलने दो, वापस लौट गए।

तभी एक दिन शाम को मरीजों की काफी भीड़ जमा हो गई थी। कहीं से घूमता हुआ एक पुलिस कांस्टेबुल उधर पहुँच गया। वह अक्सर उस बस्ती में जाया करता था। बेतरतीब भीड़ को देखकर वह सिर हिलाता हुआ हल्के-हल्के मुस्कराया। उसे लगा कि

इस तरह तो शहर में ही दंगा हो जाएगा। डंडे से भीड़ को चीरता हुआ वह सीधा भास्कर राव के सामने गया और पूछा - "यह सब तुम क्या फैलाए हो?"

भास्कर राव आई.ए.एस. बेटे के पिता थे। शहर का कमिश्नर तक उनकी जान-पहचान का था। उन्होंने डाँटा - "तमीज से बात करो! और, क्या तुम देख नहीं रहे हो।"

कांस्टेबुल एक बार तो सकपकाया। लेकिन फिर उसे लगा कि एकाध सिरिंज और दो-चार शीशी दवाइयाँ रखने वाला यह नाचीज हमें तमीज सिखा रहा है। डंडा फटकारा। भीड़ दूर खड़ी हो गई। कुछ ही देर में मेज, कुर्सी और दवा की शीशियाँ जमीन पर औंधी नजर आईं। भास्कर राव डंडा खाते-खाते बचे। कांस्टेबुल ने बताया - "अगर तुम्हें इस तरह बगैर साइनबोर्ड के यहाँ डॉक्टरी करनी है तो कम से कम बीस रुपए माहवार देने ही होंगे। वरना, आज से इधर दिखाई दिए तो समझ लो! आज तो छोड़ दे रहा हूँ।"

बहुत अपमानित महसूस करते हुए जब भास्कर राव वहाँ से चले तो अँधेरा घिर रहा था। रास्ते भर उन्हें लगता रहा कि सारे शहर के लोग उनकी बेवकूफी पर हँस रहे हैं, या बेचारगी पर तरस खा रहे हैं। अपने मन को ढाँढ़स देते हुए वे सीधे सिटी एस.पी. माथुर के बंगले पर गए। माथुर ने बड़े बेमन से सारी बातें सुनीं और बोले - "भास्कर राव जी आप तो इतने समझदार आदमी थे। कोई कमी भी नहीं थी। पता नहीं आपको यह नेतागिरी का चक्कर कैसे लग गया? जानते हैं, आपके खिलाफ कितनी शिकायतें आ चुकी हैं, हर बात की हद होती है। अमेरिका जाकर आपको इस तरह देश के बारे में प्रपंच नहीं करना चाहिए था और अभी तो चुनाव भी तीन साल बाद होगा। आपने अभी से यह ऊल-जलूल काम करना शुरू कर दिया।"

आगे भास्कर राव को कुछ भी सफाई देने की गुंजाइश नहीं रह गई। उन्हें माथुर के व्यवहार से बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा - "ठीक है माथुर साहब, अगर आपका दिमाग अफवाहों और अपराधों के इतने मजबूत पाए पर खड़ा है तो मुझे आपसे कोई उम्मीद नहीं। लेकिन आदमी अपने फर्ज के लिए दूसरों से उम्मीद ही क्यों करे? अगर आप अपने कांस्टेबुल को न भी मना करेंगे तो भी मैं अपना काम करता ही रहूँगा।" इतना कहकर वे लौट आए।

दूसरे दिन जब भास्कर राव गरीबों की उस बस्ती में गए तो उनके बैठने की जगह पर एक बकरी बाँध दी थी। उन्होंने एक लड़के को बुलाकर कहा - "बेटे, इसे ले जाकर दूसरी जगह बाँध दो।"

तभी एक बूढ़ा आदमी अपनी औरत के साथ उनके पास आया और कहने लगा -"साहब, आप लोग तो बड़े आदमी हो! मुझ गरीब की यह जमीन कब्जा करके क्या पा जाओगे?"

भास्कर राव अवाक होकर उस आदमी को देखने लगे। यही आदमी बस्ती में आने पर पहले दिन सम्मान के साथ उन्हें यहाँ ले आया था और कहा था कि - "पुण्य के इस काम के लिए मेरे घर के सामने ही आप अपनी दुकान लगाएँ।" उन्होंने आश्चर्य से पूछा -"दादा! आपसे जमीन कब्जा करने की बात किसने कही?"

उसी समय एक स्थानीय विधायक मुहल्ले में घूम रहा था। वह तीस-चालीस लोगों के साथ आकर भास्कर राव के बगल में खड़ा हो गया और जोर-जोर से चिल्लाने लगा -"भाइयों, मैं इस आदमी को बहुत दिनों से और खूब अच्छी तरह जानता हूँ। यह कल सिटी एस.पी. के बंगले पर गया था। उन्होंने इसे कान पकड़वाकर पच्चीस बार उठाया-बैठाया। इसलिए कि इसे सी.आई.ए. से पैसा मिलता है। इसके पेशाबघर में श्रीरामचंद्र जी की फोटो है। यह भगवान के ऊपर पेशाब करता है। पक्का नास्तिक! इस जगह पर कब्जा करके यह अगले चुनाव में यहाँ कार्यालय बनवाना चाहता है।"

भीड़ तो भीड़ होती है। इसके बाद किसी ने बैग छीनकर सारी दवाइयाँ जमीन पर बिखेर दीं। किसी ने धक्का देकर गिरा दिया। एक अच्छा-भला आदमी माँस-पिंड की तरह भीड़ से घिरा अपने को बचाने की कोशिश में बार-बार गिरता रहा। भीड़ बढ़ती गई। शोर ऊँचा होता गया।

शोर सुनकर कांस्टेबुल फिर आ गया। उसने स्थिति का जायजा लिया और भीड़ को किनारे हटा कर जोर से चीखा - "साले, मैंने कल ही तुम्हें मना किया था। फिर कैसे इधर चले आए?" सँभलकर उठते हुए भास्कर राव ने कुछ कहना चाहा तब तक कांस्टेबुल ने अपना डंडा उसके पेट में घुसेड़ दिया।

चाय की दुकान पर बैठे लोगों से कोई बता रहा था कि 'लकड़सुँघवा' है। दूसरे ने बताया कि इसकी दी हुई दवा खा कर लड़कियाँ रात-रात भर मर्दों की तलाश में घूमा करती थीं। आदि-आदि।

दरबान और माली दोनों का कहना है कि उस दिन भास्कर राव ने कुछ भी नहीं खाया। देर रात तक छत पर टहलते रहे। चारों ओर सन्नाटा था। शहर से बाहर जेल के घंटे की टन-टन करती कर्कश आवाज से किसी कैदी ने क्रमशः एक और दो बजने की सूचना दे दी थी। दरबान कहता है - "साहब, वैसी रात में सड़क लावारिसों के लिए होती है, किसी

शरीफ आदमी के लिए नहीं। लेकिन भास्कर राव जी उसी समय सड़क पर गए। जब लौटे तो सबेरा हो रहा था। हमने उन्हें ऐसे कभी नहीं देखा था। पता नहीं क्या बुदबुदा रहे थे। आँखें भयानक तरीके से तनी हुई थीं। मुझे तो तभी डर लग गया था।"

दूसरे दिन सब कुछ सामान्य ही दिख रहा था। शहर में किसी को इस बात का पता नहीं चल सका कि रात भर जगकर भास्कर राव अपनी किताबों से क्या बतियाते और पूछते रहे। उन्होंने सारी किताबों के ऊपर 'फ्राड' लिखकर उन्हें तहस-नहस कर दिया। रोज की तरह उस दिन भी वे नहा-धोकर अपनी क्लीनिक में बैठे। दूर-दराज से आए गरीब मरीजों से वे पूछते - "तुम्हारे गाँव में पीने के लिए टंकी का पानी जाता है, या तुम पोखरे का पानी पीते हो?"

लोग बताते - "साहब, गाँव में भी कहीं टंकी होती है?"

सुनकर भास्कर राव बहुत ही कुटिल तरीके से मुस्कराते। उस दिन सारे मरीजों के पर्चे पर उन्होंने बीमारी का एक ही कारण लिखा - "गरीबी।" दवाई की जगह लिखा - "कुछ नहीं! लाइलाज! वगैरह-वगैरह।"

"शर्मा मेडिकल स्टोर" के मालिक ने उदास होकर पास बैठे अपने एक दोस्त को बताया - "जाने क्यों भास्कर राव सारे मरीजों के पर्चे पर आज ऊल जलूल बातें लिख रहे हैं - गरीबी! लाइलाज! वगैरह-वगैरह।"

दोस्त ने बताया - "भास्कर राव पागल हो रहे हैं। सुना है, चुनाव लड़ने वाले हैं। पता नहीं अमेरिका जाकर इन्होंने क्या अनाप-शनाप भाषण दिया था।" उसने अफसोस जाहिर किया कि "यह 'नेतागिरी' का चक्कर भी अच्छे-अच्छों को ले डूबता है।"

किसी तरह पूरा दिन बीत गया। अपने-अपने काम से थके लोग घर लौट रहे थे। रिक्शेवाले सवारियों को बैठाए तेजी से बाजार की ओर भागे जा रहे थे। ट्यूबलाइटों की जगमग और शोर शराबे के बीच सारा शहर सौदा खरीद-बेच रहा था। कॉलोनी की सड़कों पर टहलती पत्नियाँ अपने पतियों को प्यार कर रही थीं। गरज कि शहर में शाम हो रही थी और लोग घरों के बाहर निकल कर ताजा हो रहे थे। तभी भास्कर राव ने गेट के बाहर निकल कर दरबान को सलामी ठोंकी और ठठाकर जोर से हँसे।

दरबान पूछने वालों को अब भी बार-बार बताता है - "साहब, जैसे सजी-सँवरी औरत अपने आदमी को मरा सुनकर काँप जाए, वैसे ही यह इतनी बड़ी कोठी काँप गई। मेरा तो खून सूख गया। वे डॉक्टरों वाला सफेद कोट और नीचे केवल जाँघिया पहने सीधे

सड़क की ओर दौड़े। एक रिक्शे पर लदी कॉलेज लौट रही चार लड़कियों ने अचरज से भास्कर राव को देखा और शरम से मुँह फेर लिया। सभ्य लोग अपनी-अपनी बालकनी पर डरकर खड़े थे और भास्कर राव जोर-जोर से सड़क पर उछलते-गाते रहे।"

—— X ——